RNI 26281/74 रजि.नं. पी.बी./जे.एल.-011/2018-20

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 45, अंक : 32 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 1 नवम्बर, 2020

विक्रमी सम्वत् 2077, सृष्टि सम्वत् 1960853121

दयानन्दाब्द : 196 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–45, अंक : 32, 29 अक्तूबर-01 नवम्बर 2020 तदनुसार 16 कार्तिक, सम्वत् 2077 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

पं. सत्यपाल पथिक का निधन-आर्य जगत् की अपूरणीय क्षति

ले. - श्री सुदर्शन शर्मा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

आर्य जगत् के उच्चकोटि के भजन लेखक एवं भजनोपदेशक आदरणीय पंडित सत्यपाल जी पथिक का निधन केवल पंजाब ही नहीं अपितु सम्पूर्ण आर्य जगत् की अपूरणीय क्षति है। श्री सत्यपाल पथिक जी का जीवन आर्य समाज एवं महर्षि दयानन्द सरस्वती की विचारधारा के प्रति समर्पित रहा है। उन्होंने आजीवन आर्य समाज का प्रचार अपनी वाणी और लेखनी के द्वारा किया। उनके लिखे गए भजन सम्पूर्ण भारत ही नहीं विश्व में भी गाये जाते हैं। वे वाणी तथा लेखनी दोनों के धनी थे। महर्षि दयानन्द की विचारधारा को उन्होंने सरल और सहज शब्दों में जन-जन तक पहुँचाया। वेद मन्त्रों के भावों को उन्होंने भजनों के माध्यम से जन-जन में लोकप्रिय बनाया। कोई भी विषय ऐसा नहीं है जिस पर उन्होंने अपनी लेखनी न चलाई हो। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन आर्य समाज के प्रचार-प्रसार में लगाया। इतने उच्चकोटि के लेखक, कवि एवं भजनोपदेशक होने पर भी वे अहंकार से कोसों दूर थे। वे बिना बुलाए भी आर्य समाजों के कार्यक्रमों में पहुँच जाते थे। उनका एकमात्र लक्ष्य आर्य समाज का प्रचार करना था। वह एक असाधारण सच्चे व सीधे मनुष्य थे। उनके सान्निध्य को प्राप्त होने पर उनकी महानता का तब पता नहीं चलता था जब वह एक सामान्य व्यक्ति के रूप में अपने मित्रों व

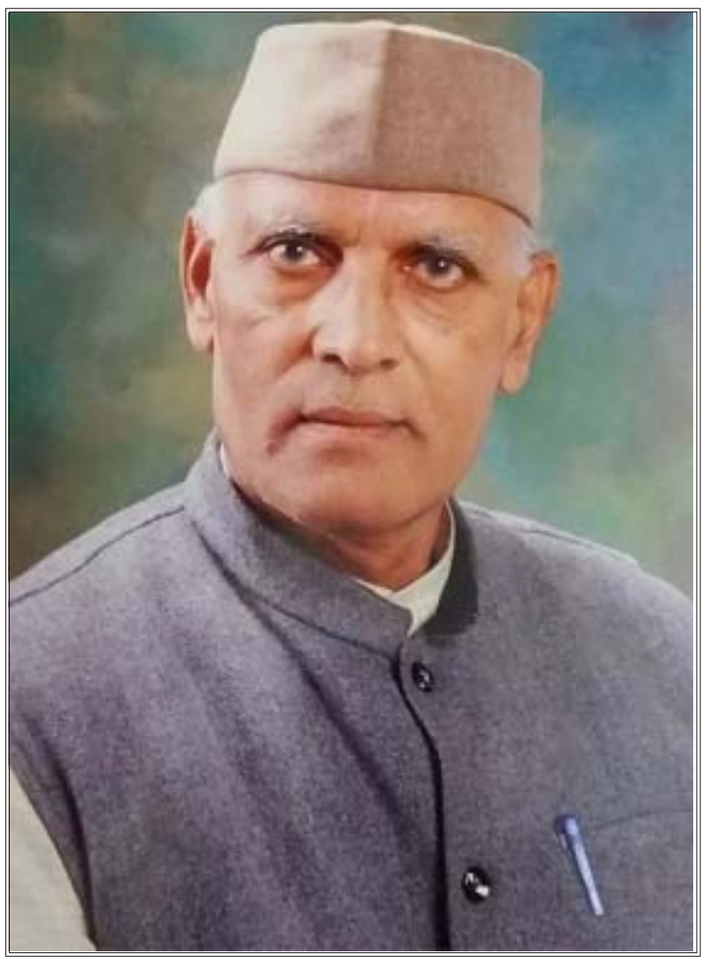

शुभचिन्तकों से बातें करते थे। उनके भजनों के शब्द हमें अमृत तुल्य लगते थे। वह कोई भी भजन गाए तो उसमें शब्दों का चयन होता था उसे श्रोताओं का हृदय सुन कर झूम जाता था। इसी उद्देश्य के साथ वे जीवन भर आर्य समाज का कार्य करते रहे। उन्होंने हमेशा उँचे आदर्शों के साथ जीवन जिया है। पूज्य सत्यपाल जी पथिक आर्य जगत् की महान् विभूति थे। भारतवर्ष ही नहीं अपितु विदेशों में भी उनके द्वारा लिखे हुए भजन गाये जाते हैं। स्वामी रामदेव जी अपने मंच से हमेशा पथिक जी द्वारा लिखे गए भजन गाते हैं।

श्री सत्यपाल जी पथिक सरल व सहज स्वभाव के व्यक्ति थे। उनमें अहंकार नाम की चीज किंचित भी नहीं देखी गई। वह अत्यन्त विनम्र और सभी ऋषि भक्तों से प्रेम करने के साथ सब का आदर एवं सम्मान भी करते थे।

वे एक सिद्धान्तशील, कर्त्तव्य परायण एवं महर्षि दयानन्द तथा वेदों की विचारधारा के प्रति समर्पित व्यक्तित्व थे। उनके द्वारा लिखे गये भजन प्राय: वेद मन्त्रों पर आधारित हैं। पूज्य श्री सत्यपाल जी पथिक के निधन से आर्य जगत् की अपूरणीय क्षति हुई है, जिसे पूरा करना सम्भव नहीं है। आज पथिक जी भले ही भौतिक शरीर के रूप में हमारे बीच में नहीं रहे परन्तु वे अपने मधुर भजनों के द्वारा आर्य जगत् में हमेशा अमर रहेंगे।

पूज्य श्री सत्यपाल पथिक जी के चले जाने का हम सब को बहुत दु:ख है। हम आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, आर्य विद्या परिषद पंजाब, पंजाब की समस्त आर्य समाजों एवं शिक्षण संस्थाओं की ओर से उन्हें अपनी श्रद्धांजलि भेंट करते हैं और परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह दिवंगत आत्मा को अपने चरणों में स्थान देकर शांति एवं सद्गति प्रदान करें और शोक संतप्त परिवार को इस दारूण दु:ख को सहन करने की शक्ति प्रदान करें। दु:ख की इस घड़ी में हम सभी शोक संतप्त परिवार के साथ हैं।

तकनीकी शिक्षा और आर्य समाज

ले.-शिवनारायण उपाध्याय दादावाड़ी कोटा, (राजस्थान)

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने समय के अद्वितीय विद्वान्, समाज सुधारक, वेदज्ञ एवं ओजस्वी वक्ता थे। अपने दीर्घ कालीन देशाटन द्वारा उन्होंने देश की दुर्दशा को निकट से देख लिया था तथा उसे बदल देने के लिए समुद्यत थे। देश की दुर्दशा के लिए वे मुख्य रूप से अज्ञान एवं तज्जन्य सामाजिक कुरीतियों, अन्ध विश्वास, मिथ्याभिमान, आपसी फूट एवं राग द्वेष को उत्तरदायी मानते थे। साथ ही दीर्घकालीन विदेशी शासन एवं उसके द्वारा की गई लूट-मार द्वारा उत्पन्न निर्धनता एवं तकनीकी ज्ञान का अभाव भी देश की दुर्दशा के लिए कम उत्तरदायी नहीं था। स्वामी दयानन्द सरस्वती को इस बात का भली प्रकार ज्ञान था कि इन कारकों को न तो अलग-अलग करके देखा जा सकता है और न अलग-अलग इनका निराकरण ही किया जा सकता है। ये आपस में आन्तनिर्भर एवं अन्तर्सम्बन्धित ही नहीं वरन् एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इनके निराकरण के लिए इन सब पर अलग-अलग दिशाओं में एक साथ आक्रमण किया जाना आवश्यक है। अज्ञान एवं अज्ञान द्वारा पल्लवित पुष्पित सामाजिक कुरीतियों, अन्ध विश्वासों, राग-द्वेषों तथा आपसी फूट को दूर भगाने हेतु उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश और संस्कार विधि की रचना की तथा देश भर में घूम-घूम कर इनके विरोध में ओजस्वी तर्क पूर्ण उपदेश दिए। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती इस बात से भली भांति विज्ञ थे कि बिना ज्ञान के प्रकाश के अज्ञानान्धकार को नहीं हटाया जा सकता है इसलिए उन्होंने शिक्षा को सामान्य से सामान्य व्यक्ति के लिए भी आवश्यक बताया। इसमें लिङ्ग भेद अथवा वर्ग भेद को अनावश्यक बताया। उन्होंने प्रमाण में यजुर्वेद के प्रसिद्ध मंत्र-

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानी जनेभ्यः।

ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणीय च। यजु. 26.2

उद्धृत किया और इस मंत्र के निर्देशानुसार सामान्य शिक्षा ही नहीं वरन् वेदाध्ययन का अधिकार भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र और वैश्य के लिए ही नहीं वरन् स्त्री, भृत्य तथा घुमक्कड़ जातियों के लिए भी आवश्यक बताया। वही प्रथम विद्वान् ब्राह्मण व्यक्ति थे जिन्होंने वेदाध्ययन का अधिकार जन-सामान्य तक को दे दिया। उनके इस महान् कार्य के लिए सन्त रोमा रोल्या ने इस प्रकार लिखा है, It was in truth an epoch making date for India when a Brahmin not only acknowledge that all human beings have the right to khow the Vedas.

Whose study had been previously prohibited by orthodox Brah-mins but insistd that their study and propaganda was the duty of every Aryan. उन्होंने देश में स्त्रियों की शिक्षा के लिए सर्वप्रथम पुत्री पाठशालाएं प्रारम्भ करने के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया। स्वामी जी अस्पृश्यता को देश पर कलंक मानते थे। इसको हटाने के लिए उन्होंने विद्वान् ब्राह्मणों के घरों पर भोजन व्यवस्था शूद्रों द्वारा की जाने की व्यवस्था की। सन्त रोमा रोल्या ने इससे प्रभावित होकर लिखा, Above all the would not tolerate the abominable injustice the existance of untouchable and nobody has been a more ordent champion of their rights. They were admitted to the Aryan samaj on the basis of equality. स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज के साप्ताहिक सत्सङ्ग के अन्त में ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त, जिसे संगठन सूक्त के नाम से जाना जाता है, का पाठ अनिवार्य कर आपसी फूट, ईर्ष्या-द्वेष पर प्रबल प्रहार किया तथा भ्रातृत्व की भावना का विकास किया है। उन्होंने देश भर में घूम-घूम कर मूर्ति पूजा, तीर्थ स्नान, बाल विवाह, फलित ज्योतिष, झाड़-फूंक के विरोध में वातावरण का निर्माण किया। स्त्रियों की स्थिति को सुधारने एवं विधवा विवाह को प्रोत्साहित करने में उन्होंने अथक् परिश्रम किया।

वे विदेशी शासक के अत्यन्त विरोधी थे। सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 8 पैरा 63 में स्वामी जी लिखते हैं, 'अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध ये अन्य देशों में राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है वह भी विदेशियों से पादाक्रान्त हो रहा है। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मत-मतान्तरों के आग्रह रहित, अपने-पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायी नहीं है।' साथ ही स्वामी जी स्वाधीनता प्राप्त करने का गुर भी यह कह कर बता देते हैं-परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा अलग-अलग व्यवहार का छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसके लिए स्वामी जी ने जो प्रयत्न किए वह इस लेख का विषय नहीं है।

स्वामी जी ने देश की निर्धनता को अति निकट से देखा था। श्रीमद्दयानन्द प्रकाश काशी काण्ड के तृतीय सर्ग में एक घटना का उल्लेख इस प्रकार है-

महाराज एक दिन बैठे हुए (गंगा तट पर) प्रकृति का स्वाभाविक सौन्दर्य निहार रहे थे। उस समय उनके सामने एक स्त्री मरा हुआ बच्चा हाथ में उठाए गंगा में प्रविष्ठ हुई। कुछ गहरे जल में जाकर बच्चे के शरीर पर लिटा हुआ कपड़ा उतार लिया और बालक के निर्जीव कलेवर को हाय-हाय के आर्तनाद के साथ पानी में प्रवाहित कर दिया। स्वामी जी महाराज उस समय अपने हृदय को थाम न सके। जब उन्होंने देखा कि वह स्त्री बच्चे के कलेवर पर लिपते हुए कपड़े को धोकर वायु में सुखाती और रोती हुई घर जा रही है। उन्होंने खेद सागर में निमग्न होकर मन ही मन कहा कि भारत देश इतना निर्धन, इतना कंगाल है कि अपने कलेजे के टुकड़े को तो माता नदी में बहा चली है परन्तु उसने वस्त्र इसलिए नहीं बहाया कि उसका मिलना कठिन है। इसके अभाव में उसका निर्वाह नहीं हो सकता है।

विदेशी शासकों द्वारा देश में लूट-मार कर जो निर्धनता फैलाई गई थी, उसका प्रतिकार कोई देश राज्य कर सकेगा स्वामी जी इसकी संभावना को नहीं स्वीकारते थे। सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 6 में उन्होंने स्पष्ट लिखा है-जो प्रजा से स्वतन्त्र राज वर्ग रहे तो राज्य में प्रवेश कर प्रजा का नाश किया करें क्योंकि अकेला राजा स्वाधीनता से उन्मत होकर प्रजा का नाशक होता है। वे तो वेदानुकूल स्वराज्य के पुजारी थे। स्वराज्य में सत्ता एक व्यक्ति के हाथ में केन्द्रित न होकर राजा, प्रजा और संसार में बंटी हुई होती है। स्वामी जी ने अनुभव किया कि प्रजा की यह निर्धनता तकनीकी ज्ञान के प्रचार-प्रसार से समाप्त की जा सकती है। वेदों का भाष्य करते हुए वे तकनीकी के ज्ञान के महत्व को अच्छी तरह समझ चुके थे। ऋ. 1.34.1 में कहा गया है कि-

त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वांयाम उत रातिरश्विना।

युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वासवोऽभ्यायं सेन्या भवतं मनीषिभिः।।

इस मंत्र में उपमालंकार है। मनुष्यों को चाहिए कि जैसे रात्रि अथवा दिन की क्रम से संगति होती है वैसे संगति करे। जैसे विद्वान् लोग पृथ्वी विकारों के यान कला कील और यन्त्रादिकों को रचकर उनके घुमाने और उस में अग्न्यादि के संयोग से भूमि, समुद्र और आकाश में आने-जाने के लिए यानों को सिद्ध करते हैं, वैसे ही मुझे भी विमानादि यान सिद्ध करने चाहिए। क्योंकि इस विद्या के बिना किसी दारिद्रय का नाश अथवा लक्ष्मी की वृद्धि कभी नहीं हो सकती है। इससे इस विद्या में मनुष्य को अत्यन्त प्रयत्न करना चाहिए। जैसे हेमन्त ऋतु में वस्त्रों को अच्छे प्रकार धारण करते है वैसे ही सब प्रकार कील कला यन्त्रादिकों से यानों को संयुक्त रखना चाहिए।

इसी सूक्त के मंत्र संख्या 2, 3 और 4 में भी यानों के विषय में वर्णन है।

फिर ऋग्वेद 1.116 के मंत्र संख्या 1 से 9 तक विभिन्न यानों और उनसे मिलने वाले लाभों का वर्णन है। मंत्र

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

आर्य जगत् के अनमोल रत्न–पं. सत्यपाल पथिक

पं. सत्यपाल जी पथिक आर्य जगत् के एक अनमोल रत्न थे। उनका जीवन सदैव आर्य समाज की सेवा के लिए संकल्पित था। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन आर्य समाज के प्रचार-प्रसार में लगाया। वे महर्षि दयानन्द के सच्चे सिपाही थे। उनके निधन से सम्पूर्ण आर्य जगत् की अपूरणीय क्षति हुई है।

पं. श्री सत्यपाल पथिक का जन्म 13 मार्च 1929 को सियालकोट में हुआ था। उनके पिता श्री लाल चन्द्र तथा माता श्रीमती कर्मदेवी थी। पं. सत्यपाल की बचपन की शिक्षा मदरसे में हुई थी। उन्होंने ऊर्दू को बंटवारे के बाद भी नहीं छोड़ा था। पं. सत्यपाल के बचपन के 17-18 वर्ष वहीं पर गुजरे। जब भारत पाकिस्तान का बंटवारा हुआ तो उन्होंने उस भयावह दृश्य को भी प्रत्यक्ष देखा और अनुभव किया। बंटवारे की जंग में उन्होंने तीन बार मौत को अपने करीब से देखा। उस समय जब कुछ मुसलमान उनके घर में आग लगाने के लिए जा रहे थे तो एक इस्माइल नामक मुसलमान ने उन्हें अपने घर में 15 दिन तक आश्रय दिया और पूरे परिवार की जान बचाई। भारत आते समय रास्ते में दो बार दहशतगर्दों ने उन्हें घेर लिया, लेकिन उनके पिता सियालकोट के जाने माने व्यक्ति थे, इसलिए उनका परिवार बच गया। सियालकोट से आने के बाद इनका परिवार अमृतसर में आकर बस गया। पं. सत्यपाल पथिकजी का विवाह 10 अप्रैल 1962 को कृष्णा देवी के साथ हुआ जो सन् 2012 तक उनकी जीवन संगिनी रही। उनके चार बच्चों में कविता और विनय दो बेटियां तथा बेटों में राजेश आर्य व दिनेश आर्य हैं। दो बहुओं में मंजू आर्य व ममता आर्य हैं। पोते-पोतियों में प्रतिभा, सुलभा, वसुधा, सर्वेश अंचला सभी भजन गाते हैं। लेकिन मंच से श्री सत्यपाल पथिक के बेटे दिनेश पथिक तथा पोता विवेक आर्य भजन गाते हैं। पं. सत्यपाल पथिक जी को सियालकोट की मिट्टी ने ऐसी खनक दी थी कि उनका भजन सुनकर सभी भाव-विभोर हो जाते थे।

पं. सत्यपाल पथिक जी ने पूरे विश्व में वेदों का प्रचार किया। सिंगापुर में तो करीब साढ़े तीन साल रहकर प्रचार करते रहे। विश्व का सबसे बड़ा यज्ञ वैदिक रीति से उन्होंने सम्पन्न किया। जिसमें सिंगापुर के तत्कालीन प्रधानमन्त्री ने अपनी आहुतियां डाली। देश का पहला डी.ए.वी. विश्वविद्यालय जालन्धर में खुला तो उसका शुभारम्भ पथिक जी के भजनों से किया गया। 100 से ज्यादा अन्तर्राष्ट्रीय मंचों को अपने भजनों से भाव-विभोर करने वाले पथिक जी कहते थे कि उन्होंने भजन पंजाबी व हिन्दी भाषा में लिखे हैं। उनके सबसे प्रिय भजनों में यह भजन उन्हें सबसे प्रिय था- किसी के काम जो आए, उसे इन्सान कहते हैं। पराया दर्द अपनाएं, उसे इन्सान कहते हैं।

देश-दुनिया में करीब 10 हजार आर्य समाज हैं। आर्य समाज द्वारा संचालित डी.ए.वी. शिक्षण संस्थाएं हैं। इन सभी संस्थाओं में पं. सत्यपाल पथिक के भजन गाए जाते हैं। योगगुरू स्वामी रामदेव अपने बचपन से ही पथिक जी के लिखे हुए भजन गाते हैं। स्वामी रामदेव जी एक बार कपिल शर्मा शो में गए। वहां पर भी उन्होंने पथिक जी का लिखा हुआ भजन-भगवान आर्यों को पहली लगन लगा दे गाया। श्री सत्यपाल पथिक जी का सबसे बड़ा सम्मान यह है कि उनकी आवाज को दुनिया पहचानती है। स्वामी रामदेव जी ने जब पतंजलि योगपीठ में आमन्त्रित करके पथिक जी को सम्मानित किया तो उन्होंने कहा कि आज देव ने योगपीठ में राम को भेजा। उन्होंने एक लाख रूपया और स्मृति चिह्न देकर उनका सम्मान किया।

श्री सत्यपाल पथिक जी अपने निवास स्थान 70-ए गोकुल विहार अमृतसर में एकान्त में भजन लिखा करते थे। जब वो भजन लिखने के लिए बैठा करते थे तो घर में किसी प्रकार की कोई आवाज या शोर नहीं होता था। उनके लिखे सभी भजन इंसान को इंसानियत का संदेश देते हैं, देश की अखंडता मजबूत करते हैं। मजहब से परे ऐसे परमात्मा की वंदना करते हैं जिसने पृथ्वी व आकाश बनाया। उनकी पहली किताब गिद्दियां दी रानी अखंड पंजाब के लोकगीतों पर आधारित है, जिसमें उन्होंने पंजाब में प्रचलित बोलियों को शब्दों में ढ़ाला है।

श्री सत्यपाल पथिक जी ने 1 हजार से अधिक आर्य समाज के भजन लिखे हैं जिन्हें सभी मतों के लोग बड़ी श्रद्धा से गाते हैं। उनके लिखे भजनों में प्रसिद्ध भजन हैं-

1. हम कभी माता-पिता का ऋण चुका सकते नहीं।
2. बुराईयों को कभी जीवन में अपनाना नहीं चाहिए।
3. किसी के काम जो आए, उसे इन्सान कहते हैं।
4. गुरूदेव प्रतिज्ञा है मेरी, पूरी करके दिखला दूँगा।
5. भगवान आर्यों को पहली लगन लगा दे।
6. प्रभु मेरे जीवन का उद्धार कर दो।
7. हम सब मिल के दाता आए तेरे दरबार

इसके अलावा भी पथिक जी के लिखे हुए सभी भजन लोकप्रिय एवं सारगर्भित हैं। उनके द्वारा लिखे गए भजन प्रायः वेद मन्त्रों पर आधारित हैं। सभी भजनों के द्वारा किसी न किसी अच्छाई या गुणों को जीवन में धारण करने की प्रेरणा मिलती है। उनके द्वारा लिखे गए भजन परिवार एवं समाज को एक लड़ी में जोड़ने का कार्य करते हैं। उन्होंने कई भजन महापुरूषों के जीवन पर लिखे हैं जिन्हें सुनकर प्रत्येक व्यक्ति अपने महापुरूषों के द्वारा बताए गए मार्ग पर चलने का संकल्प लेता है।

पं. श्री सत्यपाल पथिक महर्षि दयानन्द के सच्चे अनुयायी थे। वे एक पक्के सिद्धान्तनिष्ठ व्यक्ति थे। उनके सामने कोई भी व्यक्ति सिद्धान्त विरूद्ध कार्य नहीं कर सकता था। महर्षि दयानन्द जी की विचारधारा एवं उनके सिद्धान्तों को उन्होंने मनसा, वाचा, कर्मणा अपने जीवन में अपनाया हुआ था। वे अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक अपने इन्हीं सिद्धान्तों पर अड़िग रहे। उन्होंने अपने परिवार को भी उन्हीं संस्कारों में ढ़ाला हुआ है। उनके सुपुत्र श्री दिनेश पथिक एवं पोता विवेक पथिक उन्हीं के पद्चिह्नों पर चलते हुए आर्य समाज के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान दे रहे हैं। श्री सत्यपाल पथिक जी एक आदर्शवादी व्यक्तित्व के लिए जाने जाते थे। एक विद्वान् होने के साथ-साथ वे सौम्य व्यक्तित्व के भी स्वामी थे। अपने सौम्य व्यवहार से वे सभी को अपना बना लेते थे। वे अपने सम्पर्क में आने वाले ही व्यक्ति को आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे।

पं. श्री सत्यपाल जी के निधन से आर्य समाज ने एक अनमोल हीरा खो दिया। आर्य समाज ने एक समर्पित योद्धा खो दिया है, जिसकी भरपाई करना कदापि संभव नहीं है। उनके द्वारा लिखा गया एक-एक मधुर भजन उनकी याद दिलाता रहेगा। आज भले ही उनका भौतिक शरीर पंचतत्वों में विलीन हो चुका है परन्तु उनका यशरूपी शरीर हमेशा जीवित रहेगा।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब पं. श्री सत्यपाल जी के निधन पर गहरा दुःख व्यक्त करती है। परमपिता परमात्मा अपनी न्याय व्यवस्था के अनुरूप उनके द्वारा किए गए कर्मों के आधार पर उन्हें शान्ति एवं सद्गति प्रदान करें। हम सभी उनके जीवन से प्रेरणा लेकर आर्य समाज की उन्नति के लिए कार्य करें, यही उनके प्रति हमारी हार्दिक श्रद्धांजलि है।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

गीता दर्शन

डॉ.-सत्यदेव सिंह, 507 गोदावरी ब्लाक अशोका सिटी मथुरा

गीता 'महाभारत' जैसे महाकाव्य एवं विशाल ग्रन्थ का सारतम अंश है। गीता में अठारह अध्याय और सात सौ श्लोकों की लघुकाय गीता को कामधेनु तथा कल्पतरु की उपमा दी जाती है, जिसका अनन्य भाव से चिन्तन-मनन करने की प्रत्येक स्थिति वाला राजा और रंक व्यक्ति भी यादृच्छिक लाभ उठा सकता है। गीता के रचयिता वेद व्यास कृष्ण दैपायन हैं। गीता विश्व का इतना महान ग्रन्थ है कि अब तक लगभग 27 भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है गीता पर शंकर, आनन्दगिरि, मधुसूदन सरस्वती, रामानुज, मध्व, श्रीधर एवं अन्य बहुत से विद्वानों ने अपने-अपने भाष्य व टीकायें लिखी हैं।

वर्तमान समय में पं. बालगंगाधर तिलक का गीता रहस्य, महात्मा गाँधी का अनाशक्ति योग और श्री अरविन्द का गीता निबन्ध नामक प्रमुख ग्रन्थ गीता के विषय को लक्ष्यकर लिखे गये हैं। गीता का उपदेश महाभारत युद्ध की प्रलयकारी परिस्थितियों में श्रीकृष्ण के द्वारा अर्जुन को दिया गया था। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश ऐसी परिस्थितियों में दिया जबकि कौरव व पाण्डवों के मध्य संग्राम होने जा रहा था। भाई से भाई लड़ने जा रहा था, परस्पर एक-दूसरे का संहार करने को आमने-सामने खड़े हुए थे। ऐसी विलक्षण परिस्थिति में पाण्डव सेना के प्रमुख अर्जुन का विषाद युक्त होना स्वाभाविक ही था। अर्जुन अपने समय का परम प्रतापी योद्धा था, किन्तु वह सांसारिक परिस्थितियों में पड़कर अपने कर्म के विषय में किंकर्तव्य विमूढ़ एवं संशयालु चित्त वाला बन गया था, वस्तुत: ऐसा होना मानव मात्र का स्वभाव भी है। ऐसी विषादमय दशा में अर्जुन को पड़ा देखकर परममेधावी, कर्तव्य परायण योगीराज श्रीकृष्ण ने गीता का ज्ञान दिया। अर्जुन के समक्ष समस्या थी कि युद्ध करूँ या न करूँ? इस विकट समस्या के समाधान की मीमांसा में ही गीता का उदय होता है। अत: गीता के उपदेशों की दिशा आचार-मीमांसा का प्रतिपादन करती है।

'सांख्य' का अर्थ है तत्वज्ञान तथा 'योग' का अर्थ है व्यवहार या कर्म मार्ग। गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में ''ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे'' कहने का अभिप्राय भी यही है कि गीता का मुख्य विषय ब्रह्मविद्या पर प्रतिष्ठित व्यवहार-प्रतिपादन है।

प्रसिद्ध पाश्चात्य दार्शनिक विद्वान् सर विलियम वॉन हम्बोल्ट का कहना है कि ''गीता सबसे अधिक सुन्दर और यथार्थ अर्थों में सम्भवत: एकमात्र दार्शनिक गीत है जो किसी ज्ञात भाषा में लिखा गया है।'' गीता एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है जिसमें दर्शन, धर्म व नीतिशास्त्र का समन्वय मिलता है। गीता एक ऐसी विधि का सूत्रपात करती है, जिसे अपनाकर जनसाधारण भी अपनी आत्मिक उन्नति के शिखर पर पहुंच सकता है-ऐसी उस विधि को यदि किसी नाम से जाना जाए तो वह 'भक्ति' या 'ईश्वर' के प्रति श्रद्धाभाव कहलायेगी।

गीता व्यक्ति के आत्मिक जीवन की एकता पर बल देती है। कर्म, ज्ञान और भक्ति एक-दूसरे के पूरक हैं। गीता में ज्ञान की एक सशरीर व्यक्ति के रूप में कल्पना की गई है, जिसका शरीर तो जानकारी है और जिसका हृदय प्रेम है। ज्ञान और ध्यान, प्रेम और सेवा योग की विभिन्न अवस्थायें हैं। योग का मार्ग अन्धकार से प्रकाश की ओर, और मृत्यु से अमरता की ओर (तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतम् गमय) ले जाने वाला मार्ग है।

संसार से परे का लक्ष्य ब्रह्मलोक तक पहुंचने के रूप में ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त करने के रूप में प्रकट किया गया है। गीता में परमात्मा के साथ साधर्म्य पर बल दिया गया है, नाकि उसके साथ सायुज्य या तादात्म्य पर। मुक्त आत्मा दिव्य ज्ञान से स्फूर्ति प्राप्त करती है और दिव्य संकल्प से उसे गति मिलती है फिर वह आत्मा ब्रह्मभाव की स्थिति को प्राप्त कर लेती है। मुक्त आत्मायें सारे संसार का भार अपने ऊपर ले लेती हैं। गीता इस बात को स्वीकार करती है कि वास्तविकता तो परब्रह्म है किन्तु विश्व के दृष्टिकोण से वह सर्वोच्च ईश्वर है। गीता में ब्रह्मलोक या परमात्मा के संसार को अपने आप में शाश्वत नहीं बताया गया, अपितु वह अभिव्यक्ति की सुदूरतम सीमा है। आनन्द हमारे विकास की सीमा है और हम विज्ञान के स्तर से ऊपर उठकर उस तक पहुँचते हैं। इसका सम्बन्ध ब्रह्माण्डीय अभिव्यक्ति से है। जब ब्रह्माण्ड का प्रयोजन पूर्ण हो जाता है तो परमात्मा का राज्य स्थापित हो जाता है।

गीता और शिक्षा के सिद्धान्त

श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षाओं और उसके शैक्षिक सिद्धान्तों पर विचार करें तो हमें उसके दो पक्ष प्रमुख रूप से दिखाई देते हैं। एक ओर जितना गीता का आध्यात्मिक पक्ष प्रबल है तो दूसरी ओर उसका व्यावहारिक पक्ष भी उतना ही सशक्त दृष्टिगोचर होता है।

1.0 गीता का आध्यात्मिक पक्ष-आध्यात्मिक तत्व का गीता में बहुत ही स्पष्ट भाषा में विवेचन किया गया है। चरमतत्व का निर्देश गीता के अध्यायों में विभिन्न स्थलों पर किया गया है किन्तु इसके आठवें व तेरहवें अध्याय में इसका विशद वर्णन मिलता है। गीता के आध्यात्मिक पक्ष में हमें जिन तत्वों का स्वरूप स्पष्ट दिखाई देते है, उनका वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है-

1.1 ब्रह्म तत्व-गीता में ब्रह्म के सगुण व निर्गुण दोनों रूपों का वर्णन किया गया है किन्तु दोनों को पृथक्-पृथक् न बताकर एक ही तत्व के दो रूप बताया है। सगुण व निर्गुण की एकरूपता की झलक इस श्लोक में मिलती है:-

''सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।

असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।। गीता. अ. 13/14

अर्थात् ब्रह्म सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है, वह सब इन्द्रियों से रहित है तथा आसक्ति रहित होने पर भी सबका धारण-पोषण करने वाला और निर्गुण होने पर भी गुणों को भोगने वाला है। ब्रह्म सत् है, असत् भी है तथा इन दोनों से परे भी है-''त्वमक्षरं सदसत्तात्परं यत्''अर्थात् जो सत्, असत् और उनसे परे अक्षर है, वह आप ही है। ब्रह्म भूतों के भीतर तथा बाहर दोनों ओर है। वह अचर, चर, दूरस्थ व निकटस्थ हैं। वह जगत् का प्रभव (उत्पत्ति) तथा प्रलय (लय-स्थान) है। वह समस्त प्राणियों में वास करता है। जिस प्रकार डोरे में मणियों का समूह पिरोया हुआ रहता है, उसी तरह भगवत् (ब्रह्म) में समग्र जगत् ओत-प्रोत, गूँथा हुआ होता है-

अहं कृत्स्नस्य जगत: प्रभव: प्रलयस्तथा

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव। गीता अ. 7/6-7

अर्थात् उसके हाथ-पैर चारों ओर हैं, आँख, सिर, कान तथा मुँह चारों ओर हैं क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है। जिस प्रकार वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी का कारण रूप होने से आकाश उनको व्याप्त करके स्थित है, वैसे ही परब्रह्म परमात्मा भी सबका कारण रूप होने से सम्पूर्ण चराचर जगत् को व्याप्त करके 'स्थित' है, देखिये गीता का तेरहवें अध्याय का तेरहवाँ श्लोक-

''सर्वत: पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरो मुखम्।

सर्वत: श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।'' (13/13)

1.2 जीवतत्व-चैतन्य स्वरूप होने से जीव ब्रह्म की परा प्रकृति या उत्कृष्ट विभूति है। उसी को 'क्षेत्रज्ञ' भी कहा गया है। क्षेत्र के ज्ञाता को क्षेत्रज्ञ कहते हैं और शरीर को क्षेत्र कहा गया है क्योंकि वह कर्मों का फल भोगता है और वह भोगायतन है। आत्मा को क्षेत्रज्ञ कहा गया है, क्षेत्र (शरीर) की सम्पूर्ण क्रियाओं को स्पष्टत: जानता है। आत्मा का वर्णन यों तो गीता के भिन्न-भिन्न अध्यायों में किया गया है किन्तु दूसरे अध्याय में उसका विशेषत: उल्लेख हुआ है। आत्मा षड्विकारों से रहित है। आत्मा अथवा जीवात्मा की व्यापकता के सम्बन्ध में कुछ श्लोक पठनीय है-

न जायते म्रियते वा कदाचित्
नायं भूत्वा भविता वा न भूय:।
अजोनित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।''

-गीता अ. 2/20

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।

उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।। गीता अ. 2/19

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृहणाति नरोऽपराणि।

(क्रमश:)

हमें महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सपनों को पूरा करना है

ले.-पं. उम्मेद सिंह विशारद वैदिक प्रचारक

जब सृष्टि में ईश्वरीय संविधान वैदिक धर्म और सृष्टि क्रम पर संकट उपस्थित होता है परिस्थितियां बिगड़ जाती है। तब ईश्वरीय व्यवस्था में मुक्त आत्माएं अधर्म का नाश करने के लिये जन्म लेती हैं। संसार में जीवों का जन्म दो प्रकार से होता है। एक कर्म से बद्ध जीवों का-दूसरा कर्म के बन्धन से मुक्त जीवों का होता है कर्म बन्धन से मुक्त जीव अधर्म का नाश करने को जन्म लेते हैं। ईश्वर की प्रेरणा से कर्म बन्धन मुक्त जीवों का जन्म स्वेच्छा से नहीं होता है। और कर्म बद्ध जीवों का जन्म स्वेच्छा से होता है। आज हम एक महापुरूष संसारिक बन्धनों से मुक्त महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के धार्मिक सामाजिक-राजनैतिक में व्याप्त अन्धविश्वासों व सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध क्रान्तिकारी वैचारिक क्रान्ति के योद्धा पर विचार करके उनके सुधारवादी क्रान्ति के सपनों को पूरा करने का यथाशक्ति संकल्प लेते हैं।

तदात्मानं-सृजाम्यहम

उन्नीसवीं सदी में भारत की विषम परिस्थितियों की चुनौती के रूप में युग पुरूष महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का जन्म हुआ था। ऋषि दयानन्द (1824-1883) का जन्म काठियावाड़ प्रान्त के मौरवी राज्य के टंकारा ग्राम में हुआ था। उनके पिता जी का नाम कर्षन जी लाला जी त्रिवेदी था। वे औदिच्य ब्राह्मण थे। उनका बचपन का नाम मूलशंकर था सन्यास लेने के बाद उनका नाम महर्षि दयानन्द हुआ।

14 वर्ष की आयु में ही मूलशंकर ने यजुर्वेद कण्ठस्थ कर लिया था। इसी अवस्था में एक दिन शिवरात्रि के पर्व पर उन्होंने रात भर जागकर शिव जी के मन्दिर में मूर्ति के सामने बैठ कर उनके दर्शन की प्रबल इच्छा से सारी रात काट दी। शिव जी के दर्शन तो क्या होने थे, उन्होंने देखा कि जब सब भक्त सो गये तब मन्दिर में सन्नाटा देखकर चूहे बिलों से निकल आये और मूर्ति पर चढ़े प्रसाद को खाने लगे यह सब देखकर मूलशंकर के हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि ये कैसा देवता है जो चूहों से भी अपनी रक्षा नहीं कर सकते? उनकी इस समस्या का समाधान कोई न कर सका और यही कारण है कि कार्य क्षेत्र में पदार्पण कर ऋषि दयानन्द जी ने मूर्ति पूजा का जबर्दस्त खण्डन किया और तमाम रूढ़िवाद पर प्रहार किया।

ऋषि दयानन्द समझते थे कि हिन्दू समाज का ढ़ांचा बिगड़ा हुआ है। तब इसे कैसे बदला जा सकता है। महर्षि दयानन्द जी जब इस देश के रंणागन में उतरे तब चारों तरफ चुनौतियां ही चुनौतियां नजर आई। ऋषि दयानन्द की आत्मा ने जवाब दिया, सर्व प्रथम विदेशी राज्य को बर्दाशत नहीं करूंगा। यही कारण है सर्व प्रथम उन्होंने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में लिखा था स्वराज्य सर्वोपरि है और उन्होंने स्वतन्त्रता आन्दोलन का बिगुल बजाया।

1857 की स्वतन्त्रता क्रान्ति के असफल होने का कारण भीतरघात था और देश द्रोहियों के कारण असफलता मिली थी और अंग्रेजों ने बुरी तरह कुचल दिया था। स्वाधीनता का नाम लेना भी भयानक था। ऐसी विकट समय और परिस्थिति में भी महर्षि दयानन्द जी ने स्वतन्त्रता आन्दोलन का नव जागरण किया। 1857 से 1947 तक आर्य समाज संगठन के बैनर तले लाखों युवकों ने बलिदान किया था।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के स्वप्नों का भारत (रूढ़िवाद पर प्रहार)

वर्तमान युग के भारत के सामाजिक विचारों में ऋषि दयानन्द पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सदियों से परम्परागत रूढ़िवाद पर कठोर प्रहार किया। अब तक के सामाजिक विचारकों की सोच थी कि जो चला आ रहा है उसी में सुधार व रक्षा करते हैं। किन्तु समाज में व्याप्त धार्मिक-सामाजिक राजनैतिक अन्धविश्वासों के उन्मूलन के प्रति और अन्य किसी का भी साहस नहीं हुआ। यदि किसी ने समाज की एक बुराई के प्रति ही आन्दोलन किया था किन्तु महर्षि दयानन्द जी तो तमाम व्याप्त कुरीतियों के उन्मूलन हेतु कमर कस कर मैदान में कूद पड़े थे।

भारत का धर्म वेदों से बंधा हुआ था और सभी वेदों की शिक्षा को मानते थे किन्तु तत्कालीन विद्वानों ने जैसे शंकराचार्य-मेक्समूलर-जेकोवी-महीधर आदि ने वेदों के इतिहास परक मौलिक अर्थ किये थे। उन्होंने कहा वेदों में जातिपाति है, वेदों में अवतारवाद है, वेदों में शूद्रों और स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। वेदों में पशुबलि है, वेदों में सती प्रथा है, मृतक भोज व श्राद्ध आदि है, अनेक धार्मिक-सामाजिक कुप्रथाओं का चलन बनाकर समाज में एक अन्धविश्वासों की दीवार खड़ी कर दी थी। महर्षि दयानन्द जी ने वेदों के ईश्वर परक अर्थ कर कहा वेद मंत्र यौगिक है और उपर्युक्त मान्यताओं को एक सिरे से खारिज कर दिया। उन्होंने सबसे पहला प्रहार वेदो के रूढ़ी अर्थों पर किया।

धार्मिक क्षेत्र में रूढीवाद पर प्रहार और ईश्वरीय वेदानुसार साम्यवाद का सपना

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने उपदेशों और शास्त्रों में कहा महाभारत के बाद सर्वाधिक मानव का शोषण धार्मिक क्षेत्र में हुआ है। धर्म वह है जो सृष्टि क्रम से वेदानुसार व विज्ञान अनुसार है जो आदि से अनादि काल तक अपने परोपकारी स्वरूप में रहता है धर्म कभी भी मानव को दु:ख नहीं देता है। किन्तु स्वार्थी लोगों ने अपने-अपने कल्पित मत बनाकर मानव समाज को बांट दिया और ईश्वरीय मानव धर्म से हटाकर आपस में उलझा दिया, और अपने-अपने मतों को धर्म का रूप दे दिया। जबकि मानव धर्म वेदों से बंधा होने के कारण एक है, एक निराकार सर्वशक्तिमान ईश्वर की पूजा, एक तरफ से वैदिक सोलह संस्कार, साम्यवाद, सर्वहितकारी शोषण रहित मान्यताएं। जाति पाति, छुआछूत व वर्ग वाद रहित।

महर्षि दयानन्द जी ही एक ऐसे विचारक थे जिन्होंने भारतीय संस्कृति को छोड़ा भी नहीं और पाश्चात्य संस्कृति का भी सम्मान किया। उन्होंने वेदों से लेकर वेदों में से ही रूढ़िवादिता के साथ टक्कर लेकर सर्वथा नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया प्राचीनता तथा नवीनता के सम्मिश्रण का आधार खड़ा कर दिया। इसका मुख्य रूप था वेदों के अर्थों का ईश्वरपरक व सृष्टिकर्मानुसार करना। अर्थात् हिन्दू समाज में तमाम अन्धविश्वासों को मिटाया और सदैव के लिये मिटाने का सपना देखा था।

सामाजिक क्षेत्र में रूढ़ीवाद पर प्रहार और आदर्श समाज का सपना

महर्षि दयानन्द जी के विचार का दृष्टिकोण सर्वथा मौलिक था। वे भूत, वर्तमान तथा भविष्य को तथा पिछले तथा अगले को मिलाकर चलना चाहते थे। यही कारण है कि सिर्फ भूत के साथ चिपटे रहने वाले रूढ़ीवाद का सामाजिक क्षेत्र में भी उन्होंने बहिष्कार किया। स्त्री शिक्षा, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध दहेज प्रथा, जातिपाति छुआछूत आदि अनेक सामाजिक कुप्रथाओं का विरोध किया। उन्होंने एक बिलकुल नवीन अर्थात् वेदानुसार प्राचीन संस्कृति का दृष्टिकोण समाज के सम्मुख रखा। फलस्वरूप समाज के प्रत्येक क्षेत्र में भारतीयों को एक नवीन किन्तु सरल व संशयरहित विचारधारा मिली। समाज में एक नवीन जागरण का युग प्रारम्भ हो गया। सदियों से चली आ रही अनेक कुप्रथाऐं सुप्रथा में परिवर्तन होने लगी। यही कारण है 19वीं शताब्दी में सर्वाधिक सफलता महर्षि दयानन्द जी को मिली और उन्होंने जो शुद्ध रूप रेखा बना दी थी उसी रेखा पर 20वीं शताब्दी के सामाजिक तथा राजनैतिक नेताओं ने कार्य किया।

राजनैतिक क्षेत्र में रूढ़ीवाद पर प्रहार और शुद्ध राजनीति का सपना

ऋषि दयानन्द की विचारधारा का आधार भ्रष्ट व स्वार्थी रूढ़ीवादी राजनीति का उन्मूलन करना था। उन्होंने धार्मिक व सामाजिक नेता होते हुए भी राजनीति में रूढ़ीवाद पर प्रहार किया। उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाश के 8वें सम्मुलास में लिखा अभाग्यादेय से और आर्यों के आलस्य-प्रमाद परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज करने की कथा ही क्या कहनी किन्तु आर्यवर्त में भी आर्यों का अखण्ड-स्वतन्त्र-स्वाधीन-निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है वह सो भी विदेशियों से पादाक्रान्त हो रहा है। जब दुर्दिन आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अत: महर्षि दयानन्द जी का सपना था भ्रष्ट राजनीति को सदाचारी बनाना और भारत को विदेशियों से मुक्त कराना।

आत्म निवेदन

युग पुरूष महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का सपना था कि हमारा भारत राष्ट्र का एक धर्म वैदिक धर्म हो, सम्पूर्ण मानव संशय रहित अन्धविश्वास रहित जीवन जिए तथा भारतीय प्राचीन ऋषियों की परम्परा चलें। समाज वर्ग रहित समानता पर चलें। ऐसा साम्यवाद हो जहां कोई भेदभाव न हो। सम्पूर्ण मानव जगत विवेकशील होकर धार्मिक सामाजिक व राजनेतृत्व का शुद्ध स्वरूप विज्ञानानुसार और वेदानुसार पथ पर चले। हमारा राष्ट्र अक्षुण्ण हो सदा उसकी जय हो। आइए आज समय की पुकार है हम महर्षि दयानन्द जी के सपनों को पूरा करें।

''संक्रमित नहीं, हम संकल्पित होवें''

ले.-रामफल सिंह आर्य तृतीय तल, आनन्द विहार उत्तम नगर नई दिल्ली-59

मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपने आस पास की परिस्थितियों से प्रभावित हुआ करता है। परिस्थितियां यदि अनुकूल हो तो उन्हें अपना लेता है और यदि प्रतिकूल हुई तो या तो उनसे संघर्ष करता है या उनसे दूर हट जाता है। अनुकूल हो या प्रतिकूल प्रभावित तो दोनों करती ही हैं। इसके अतिरिक्त एक तीसरी स्थिति यह भी बनती है कि यद्यपि कुछ बातें प्रत्यक्षत: प्रतिकूल नहीं लगती है लेकिन कालान्तर में उनका परिणाम विपरीत रूप में मिलता है। साधारण लोग जिसे हानिकारक न मान कर सरलतापूर्वक अपना लेते हैं, वही कार्य आगे चलकर उनकी दिशा बदलने वाला हो जाता है। इसी को संक्रमण कहा जाता है। जो शनै-शनै प्रवेश करके सर्वत्र अपना ही साम्राज्य स्थापित कर लें, न केवल साम्राज्य स्थापित ही करें अपितु जिसके अन्दर प्रवेश करें उसके मूल रूप को, मूल ढांचे को, उसकी संरचना को ही नष्ट कर दे या विकृत कर दे। उदाहरण के रूप में किसी व्यक्ति का स्वास्थ्य बहुत उत्तम था, शरीर के अंग प्रत्यंग ठीक से कार्य कर रहे थे कि अचानक किसी रोग के कीटाणु कहीं से उसके शरीर में प्रवेश कर गये। कुछ दिन तक तो उस व्यक्ति को पता ही न चला परन्तु शरीर के अन्दर तो युद्ध प्रारम्भ हो चुका था। उन कीटाणुओं ने शरीर की रोग-प्रतिरोधक शक्ति पर आक्रमण करके उसे नित्य निर्बल बनाना प्रारम्भ कर दिया। संक्रमण धीरे-धीरे फैलता रहा और एक दिन वेदना से पीड़ित होकर वह व्यक्ति चिकित्सक के पास गया तो पता चला कि रोग ने शरीर को जकड़ लिया है अत: औषधादि लेनी पड़ेगी, पथ्य अपथ्य का भी ध्यान रखना पड़ेगा। बलवान शरीर इस संक्रमण के कारण अन्दर से विकृत होकर कष्ट पा रहा था।

बिल्कुल ठीक इसी प्रकार से विचारों का भी संक्रमण होता है। दूषित विचार, कुप्रथायें भी इसी प्रकार असावधानी से या भूत से भविष्य में प्रवेश करती हैं और धीरे-धीरे विचारों का परिवर्तन होने लगता है। आश्चर्यजनक रूप से वे कुत्सित विचार ही मन को भाने लगते हैं। उस समय इस बात का पता ही नहीं चलता कि वैचारिक संक्रमण हो चुका है। यदि कोई मित्र या सम्बन्धी कुछ संकेत करता भी है तो यहीं उत्तर मिलता है कि अरे छोड़ो भी इन छोटी मोटी बातों से क्या अन्तर पड़ता है? वास्तव में यहीं से विकृतियां या संक्रमण प्रारम्भ होता है और धीरे-धीरे परिवर्तन इतना बड़ा होता है कि सब कुछ उलट जाता है। मान लीजिये कि एक निष्ठावान और श्रेष्ठ व्यक्ति किसी कार्यालय में कार्य करता है जहां पर जन सामान्य का कार्य होता है। दिन में कई लोग आते हैं अपना कार्य करवाने के लिये। वह बिना किसी लोभ के उनके कार्य सम्पन्न करवा देता है। एक दिन एक व्यक्ति आता है, उसके हाथ में मिठाई का डिब्बा होता है जो कि प्रसन्नतापूर्वक उसको देकर चला जाता है। यद्यपि वह मना करता है, इसे लेने के लिये परन्तु आगन्तुक बड़े आग्रहपूर्वक उसे दे देता है। मिठाई वह घर पर ले जाता है, बच्चों को देता है, स्वयं भी खाता है, बड़ी स्वादिष्ट लगती है। कुछ दिन के पश्चात् वही व्यक्ति अपने कार्यवश पुन: आता है। इस बार पहले से ही उसके हाथ में डिब्बा होता है। मना करने पर भी विनीत भाव से दे जाता है और कार्य हो जाता है। यह बात वह एक दो व्यक्तियों को और बता देता हैं जिनमें से एक व्यक्ति एक लिफाफा दे जाता है जिसमें कुछ पैसे होते हैं। साथ में यह भी कहता है कि भाई साहब आपने कोई मांगे थोड़े ही हैं, मैं अपनी स्वेच्छा से प्रसन्नतापूर्वक देकर जा रहा हूं। इसे कोई रिश्वत मत समझना यह तो बच्चों के लिये मिठाई हेतु हैं। अब धीरे-धीरे यह क्रम चल पड़ता है और एक स्थिति ऐसी आती है कि अब वह बिना पैसे किसी का भी कार्य नहीं करता।

एक और उदाहरण लीजिये। घर में बच्चे का जन्मदिन है, सभी बड़ी प्रसन्नता में भरे हुए थे। दादा दादी ने तो यज्ञ किया परन्तु बच्चे के चाचा और उसकी माता जी ने 'केक' काटने का भी प्रबन्ध कर लिया। उनके आग्रह के सामने दादा-दादी भी नतमस्तक हो गये। यद्यपि उनका मन तो न था परन्तु बच्चों ने कहा कि हम आपकी प्रसन्नता के लिये हवन में बैठे तो क्या आप हमारी प्रसन्नता के लिये केक काटने के कार्य में सम्मिलित न होंगे? और वैसे भी यह तो एक खेल ही है, बच्चे इकट्ठे होते हैं, नाच गाना कर लेते हैं इससे कहा हमारी संस्कृति बिगड़ती है। तो केक काट कर खूब उछल कूद मचाई गई। अगले वर्ष बच्चा कुछ बड़ा हुआ तो उसके मित्रों की संख्या बढ़ी। गाने के लिये भी पर्याप्त साधन जुटाये गये और सायंकाल के समय लगभग तीन घण्टे तक धमाल मचा। फिर प्रतिवर्ष स्थिति बदलती गई और अब यज्ञ का तो कोई चिन्ह रहा ही नहीं जन्मदिन की पार्टी भी होटल तक जा पहुंची जिसमें अभक्ष्य पदार्थ भी आने मिले।

हमने ये केवल अत्यल्प से उदाहरण दिये हैं। सुधि पाठकगण अन्य स्थानों पर इस प्रक्रिया को स्वयं ही लागू करके देखेगें तो विषय स्पष्ट हो जायेगा। जो बातें हमें प्रत्यक्ष रूप से कोई हानिकारक दिखाई न दे रही थी, उनका परिणाम कितना विपरीत बन गया? यह सब इसलिये बना कि हमारे संकल्प में न्यूनता थी। संकल्प में विकल्प विद्यमान था। हमने विकल्प को चुन लिया जिससे संकल्प जाता रहा। यदि संकल्प दृढ़ होता तो ऐसी विकृतियां नहीं आ सकती थी वे उठने से पहले ही समाप्त कर दी जाती। अंग्रेजी भाषा की एक कहावत है-अर्थात् बुराई को तो उसके प्रारम्भ में ही बलपूर्वक दबा देना चाहिये। जैसे-जैसे यह बढ़ती जायेगी, इसका दबाना कठिन से कठिनतर होता जायेगा और एक दिन असम्भव भी हो जायेगा। हमारी भारतीय संस्कृति का मूलाधार यज्ञ है। यदि भारतीय संस्कृति से यज्ञ की भावना को निकाल दिया जायेगा तो शेष कुछ भी न बचेगा। जो बचेगा वह विकृति ही होगी, संस्कृति नहीं।

यज्ञीय भावना किससे पल्लवित पोषित होती है? कौन सा साधन है जो उसको बढ़ाता है और सुरक्षित रखता है? वह साधन है-संकल्प। यज्ञ कभी भी संकल्प के बिना सम्पन्न नहीं होता। इसीलिये हमारे ऋषियों ने यज्ञ के प्रारम्भ में ही संकल्प पाठ का विधान कर दिया। यज्ञवेदी पर बैठते ही पुरोहित ने यजमान को संकल्पाग्नि से बांध दिया। बस अब अन्य विचारों को त्यागकर यज्ञीय भावों को ही मुख्यता दी। वह यजमान को उत्थान की ओर तभी लेकर चलेगा जब वह उसका वरण करेगा। वरण कर लिया है तो इसका अर्थ है कि उसने पुरोहित के संकल्प से अपना संकल्प जोड़ लिया है। संकल्प का अर्थ ही है-सम्+कल्प अर्थात् अच्छी प्रकार से कुछ निर्माण करने के लिये कटिबद्ध होना। अत: वेदी पर बैठा यजमान अब यज्ञ की प्रत्येक प्रक्रिया के रहस्य को सम्यक्तया जाने और अपनाने के लिये तैयार है। हमारा उद्देश्य यहां पर याज्ञिक क्रियाओं की व्याख्या करना नहीं है, उसके लिये तो एक स्वतन्त्र बृहद् लेख की आवश्यकता है। हमारा उद्देश्य तो मन में उन दिव्य एवं उदात्त भावनाओं को भरना दिखाना है जिससे कि बाहर का यह यज्ञ अन्तर में, मन और आत्मा में मूर्त रूप होकर यज्ञकर्ता को देव बनाने की ओर ले जाता है। बाहर यज्ञकुण्ड में सामग्री और घृत की आहुतियां डाली जा रही हैं तो भीतर मन की चंचलता की, अरातिभावों की, विघटनकारी विचारों की आहुतियां डल रहीं हैं। यही यज्ञ की सफलता है। यही शिवसंकल्प की अग्नि है। इस प्रकार से यज्ञ करने वाला और संकल्प को सुरक्षित रखने वाला व्यक्ति कभी भी संक्रमित नहीं होता। न वह मानसिक रूप से अस्वस्थ होता है और न ही शारीरिक रूप से।

आयुर्वेद के ज्ञाता इस बात को भली प्रकार से जानते हैं कि कितने ही रोग तो ऐसे हैं जो कि केवल विकृत विचारों से शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं। इसके विपरीत कितने ही ऐसे रोग हैं जिनको केवल प्रबल विचारों से ही दूर किया जा सकता है। एक ब्रह्म ज्ञान का सच्चा पिपासु जंगलों में, पर्वतों पर, गुफाओं में, कंटकाकीर्ण झाड़ियों में न जाने कहां कहां भटक रहा है लेकिन कोई ऐसा मार्गदर्शक नहीं मिलता जो कि ज्ञान की इस तृष्णा को शान्त कर सके।

(क्रमश:)

पृष्ठ 2 का शेष-तकनीकी शिक्षा और आर्य समाज

संख्या 4 में एक ऐसे यान की ओर संकेत है जो तीन दिन में सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा करने में समर्थ है।

परावत नासत्या देथा-मुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मवारम्।
क्षरन्नायो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोमस्य।।
ऋ. 1.116.9

स्वामी दयानन्द इस मंत्र के भावार्थ में लिखते हैं। इस मंत्र में उपमालंकार है। शिल्पी लोगों को विमानादि यानों में जिसमें बहुत मीठे पानी की धार आवे ऐसे कुण्ड को बना कर आग से उस विमान आदि यान को चला उसमें सामग्री को धर एक देश से दूसरे देश को जाए और असंख्यात धन पाए के परोपकार का सेवन करना चाहिए।

स्वामी जी को यंत्र विषयक् अनेक मंत्र ऋग्वेद में जगह-जगह पर मिल रहे थे। ऋ. 1.119.10 को वे तार विद्या का मूल मानते हैं। उस काल में जर्मन देश तकनीकी विद्या में शीर्ष स्थान पर था अत: स्वामीजी ने जर्मनी के टेक्नीशियन्स द्वारा भारत के छात्रों को तकनीकि ज्ञान दिलाने का निश्चय किया। इस विषय में उन्होंने वेशडन निवासी जी वाइज नामक टेक्नीशियन से पत्र व्यवहार प्रारम्भ किया श्री जी वाइज के 9 पत्र श्री युधिष्ठिर जी ने ऋषि दयानन्द सरस्वती को लिखे गए पत्र और विज्ञापन (तृतीय भाग) नामक ग्रन्थ में दिए हैं।

मैं उन पत्रों के कुछ अंश पाठकों के सामने रखने का लाभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। पत्र संख्या 2 दिनांक 29.6.1880 को जी-वाइज लिखते हैं-

जिन लोगों को अंग्रेजी, फ्रांसीसी या किसी दीगर यूरोपीय भाषा की जानकारी हो वह बहुत थोड़े समय में जर्मन भाषा बगैर कष्ट के सीख सकते हैं।... मैं अपने शिष्य को दो विषय पढ़ा सकता हूँ। एक तो पोलिटिकल इकोनॉमी और दूसरा स्टेनोग्राफी।... बिला शुबह आप चाहते हैं कि पेशतर इसके कि आप छात्र को हमारे हवाले करके उन्हें इसके लिए क्या अदा करना होगा? अंग्रेज शागिर्दो के लिए जिनकी उम्र 8 वर्ष से 12 वर्ष तक हो हमारी फीस कम से कम 1500 रूपया और ज्यादा से ज्यादा 2625 रूपया है। अकेले छात्र से मुझे इससे कहीं अधिक मिल जाया करता है। जैसे अभी छात्र में जो मुझसे अहलदा हुआ उससे मुझे 5400 रूपये एक वर्ष के लिए मिला है।... हमने हिसाब लगाया है कि 2000 रूपये सालाना फीस पर हम आपके छात्र को लेने को तैयार है।

पत्र संख्या 3 में दिनांक 30.6.80 जी. वाइज लिखते हैं-हमें एक होशियार कारीगर मिल गया है जो मेरे हिस्सेदार दोस्त का दोस्त है। वह आपके एक या दो छात्रों को अमली और जबानी तालीम के लिए अपने काम में लेने को रजामन्द है। हमें ऐसे आदमी मालूम है जो हमारे छात्रों को लकड़ी के गोदामों और कारखानों में लेने के लिए तैयार है ताकि वे इस हुनर को सीख सके। आज मैं एक कारीगर लुहार के कारखाने में गया जो अपनी आटा पीसने वाली चक्कियां एक छोटे से गैस इंजन से चलाता है उस कारखाने में भी बेहतरीन चाकू, कैचियां और तलवारे तथा अन्य इसी तरह का सामान बनाने सीखने के लिए दो छात्र दाखिल किये जा सकते हैं।... घड़ी साजी सीखने के तो बेशुमार मौके हैं। घड़ी साजी का सबसे बड़ा काम यही सिखाना होता है कि घड़ी की मशीनरी के लिए अलग-अलग पूर्जो से वाकिफ हो जाये और स्वयं ठीक से मिला सके। वक्त पर मशीनरी के हर हिस्से की मरम्मत कर सके।... घड़ी के पहिये और दिगर पुर्जो का बनाना घड़ी साजों का काम नहीं होता। ये अमूमन बड़े-बड़े कारखानों में बनाये जाते हैं। इनमें अक्सर दो तीन गांव की आबादी जितने लड़के, औरतें और मर्द मुलाजिम होते हैं। उनमें से हर एक घड़ी के खास पहिये का एक-एक पुर्जे को बनाने का काम सीखता है। एक ही काम को रोज बरसों तक करने के कारण वह उस खास पुर्जे को बनाने में ऐसा माहिर हो जाता है कि जिस घड़ी में यह पुर्जा लगाया जाना होता है उसमें उसके तैयार कर्दा पुर्जा की बजाए और किसी का तैयार कर्दा पुर्जा अच्छी तरह नहीं लग सकता है।... यदि आप हिन्दुस्तान के लिए भी घड़ियां तैयार करना चाहे तो आपको निहायत कोशिश करके चंद होशियार नौजवानों को जो मशीनरी का काम सीखने के काबिल हो जर्मनी भेजना चाहिए। पत्र संख्या 4 में जी. वाइज लिखते हैं। रंग साजी का काम मुनासिब तौर पर सिखाया जा सकता है और वह लाभदायक साबित होगा। वीज वेडन में कई आला रंगसाज है जिनमें से एक निहायत होशियार है।... उसके विचार में जो व्यक्ति इस हुनर को सीखना चाहता है उसके लिए एक छोटे से कारखाने में सीखना बेहतर होगा। वहां स्टीम की बजाए हाथ से अधिक काम करना होता है। इसके बाद छात्र को अमली काम के लिए केमेस्ट्री का इल्म सीखना पड़ता है। उसी प्रकार पत्र संख्या 9 में दिनांक 17.10.80 को वाइज लिखता है-

वे भारतीय छात्र एक साल की मुनासिब की शिक्षा और आला हिदायत से एक साल में जर्मन सीख लेगें। इस तरह यह पत्र व्यवहार सन् 1880 में समाप्त हो गया। स्वामी जी के अन्य कार्यों में व्यस्त होने और अर्थ की अल्पता से यह योजना असफल रही।

डॉ. भवानीलाल भारतीय ने नव जागरण के पुरोधा के पृष्ठ 459 पाद टिप्पणी 19 में लिखा है-30 नवम्बर 1880 को आगरा के लाला मूलराज को लिखे अपने पत्र में स्वामी जी ने देश की बढ़ती हुई बेकारी की समस्या पर चिंता व्यक्त की है। उन्होंने कला कौशल सिखाने के लिए एक पाठशाला की आवश्यकता बताते हुए उसकी स्थापना के लिए संकेत दिया है कि हमें एक ऐसा फण्ड बनाना चाहिए जिससे स्वदेशीय छात्रों को कला-कौशल सीखने के लिए जर्मनी भेजा जा सके।

फिर स्वामी जी निम्न कामों में अधिक व्यस्त हो गए। ऋग्वेद और यजुर्वेद का भाष्य साथ-साथ कर रहे थे। देश में लगातार घूम-घूम कर वैदिक संस्कृति का प्रचार तथा विरोधी मत वालों से शास्त्रार्थ, महारानी विक्टोरिया को लार्ड रिपन के मार्फत गोवध निषेध हेतु एक प्रतिवेदन भेजना। इसके लिए देश भर में हस्ताक्षर अभियान चल रहा था। थियोसोफिकल सोसायटी से पत्र व्यवहार चल रहा था अनाथालय खोले जा रहे थे। इन विषयों में अधिक व्यस्त होने पर भी वे तकनीकी शिक्षा के लिए फण्ड एकत्रित करना नहीं भूले थे। लाहौर आर्य समाज के मंत्री जवाहर सिंह ने अपने पत्र दिनांक 16.3.83 को लिखा 'एक परम हर्ष की बात है कि हमारे आर्य समाज में एक Science Institute खुलने वाला है। यह हमारे देश में पहली बात होगी। इसके द्वारा सब प्रकार की विद्या हस्त क्रिया से करके दिखाई जावेगी। बिजली, तार, रेल आदि कारीगरी सब दिखाई जावेगी। सब असबाब विलायत से मंगाया जावेगा। थोड़ी जगह से ही 400/- का चन्दा हो गया है और प्रयत्न किया जावेगा' परन्तु समाजों से नहीं क्योंकि मिशन फण्ड के लिए एक लाख रूपये की आवश्यकता है।' पुन: दिनांक 18.4.83 को जवाहर सिंह लिखते है-'Aryan Science Institute' जो हम खोलना चाहते हैं उसकी भाषा (हिन्दी) में 'आर्य प्रकृति विद्या अनुष्ठान कह सकते है।'

इस समय गोवध विरोधी हस्ताक्षरों पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा था। दिनांक 25.6.83 को लाहौर से एक पत्र आया उसमें लिखा था', गोरक्षा का एक पत्र भेजता हूँ। पटियाला में एक पुरूष ने 60 हजार पुरूषों के हस्ताक्षर कराये है। राजस्थान में इस विषय पर देशी नरेशों के हस्ताक्षर करवाने का प्रयास किया गया। महाराणा उदयपुर, महाराजा जोधपुर, बून्दी के महाराज ने इस पर हस्ताक्षर कर दिये है। इसी वर्ष स्वामी दयानन्द को जोधपुर में विष दे दिया गया। जिसमें 30 अक्टूबर 1883 को उनका देहांत हो गया। उनके बाद D.A.V. संस्थाओं में एवं गुरूकुलों में तकनीकी शिक्षा से आयुर्वेद को नव जीवन मिला। लगभग सभी गुरूकुलों और D.A.V. संस्थाओं में पशु पालना तथा डेयरी फार्म प्रारम्भ हो गए। फिर देश की स्वतन्त्रता हेतु आन्दोलन प्रारम्भ हुए उनमें आर्य समाज का योग सार्वधिक रहा। वर्तमान में आर्य समाज और D.A.V. संस्थाएं कई टेक्नीकल संस्थाओं का भी संचालन कर रहे हैं। केवल D.A.V. संस्थाओं में ही 20 लाख छात्र अध्ययन कर रहे हैं। इसी प्रकार लाखों छात्र गुरूकुलों में सब प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

अदिति के सम्पर्क से आनन्दित हों

ले.-अशोक आर्य पाकेट १/६१ रामप्रस्थ ग्रीन से. सैक्टर ७ वैशाली

मानव जीवन में जो कुछ भी आनन्द या खुशी है, उस सुख का आधार अदिति (परमात्मा) ही है। मानव सदा सुख चाहता है, खुशी व प्रसन्नता चाहता है। इसलिए इसे निरन्तर अदिति के सम्पर्क में रहना आवश्यक है। यह वह तथ्य है, जिस पर यजुर्वेद का १४वां मन्त्र इस प्रकार प्रकाश डाल रहा है:-

शर्मास्यवधूतं रक्षोऽवधूताऽ-अरातयोऽदित्यास्तवगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु।

अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्तवग्वेत्तु।। यजुर्वेद १.१४।।

यजुर्वेद के इस मन्त्र में छः बिन्दुओं पर विचार करते हुए प्रभु ने उपदेश किया है कि:-

१. मानव जीवन आनन्द से भरपूर:-

जब हम अपने अन्दर व बाहर के सब कलुष, सब बुराईयां, सब गन्दगी धो कर शुद्ध व पवित्र हो जाते हैं तो हम प्रभु की निकटता पाने के अधिकारी हो जाते हैं। जिस प्राणी को प्रभु के निकट आसन लगाने का अधिकार मिल जाता है, उस प्राणी का जीवन आनन्द से भर जाता है। अब सब ओर उसे आनन्द ही आनन्द, सुख ही सुख, खुशी ही खुशी मिलती है। वह प्रतिक्षण आनन्द में ही विचरण करता है।

जब प्राणी प्रयत्न पूर्वक अपने अन्दर व बाहर के शत्रुओं को पराजित कर पवित्र हो जाता है तो उसका जीवन आनन्दमय हो जाता है। इस आनन्द को, इस खुशी को पाने के लिए ही हम अपनी भोगमयी प्रवृति को बदल कर निःस्वार्थ प्रवृति में विचरण करने के लिए सदा अपने अन्दर के शत्रुओं से संघर्ष करते रहते हैं। हमारी पवित्रता के कारण हमारे अन्दर की राक्षसी तथा भोगवादी प्रवृतियां कम्पित होती हैं, भयभीत होती है और हमारे शरीर को त्याग कर चली जाती हैं। इस प्रकार हम अपने अन्दर की राक्षसी प्रवृतियों से चल रहे युद्ध में विजयी होते हैं। यह प्रवृतियां पवित्र शरीर में रह ही नहीं सकी। जिस प्राणी को प्रभु की निकटता का अधिकार मिल जाता है, उसके पास यह प्रवृतियां टिक ही नहीं सकतीं। इसलिए ज्यों ही हम पवित्रता को प्राप्त होते हैं, यह बुराईयां स्वयं ही भाग जाती हैं। यह बुरी प्रवृतियां हमें निर्धन बनाने वाली होती है किन्तु इन से छूट कर हम प्रभु की निकटता के कारण अपार धन ऐश्वर्य के भण्डारी बन जाते हैं।

२. आत्म सम्मान के लिए दिव्यगुणों:-

हे प्राणी! जब तू अपने अन्दर के शत्रुओं का नाश कर लेता है, अपनी राक्षसी प्रवृतियों को नष्ट कर लेता है, तब तू अदिति की समीपता पाने का अधिकारी हो जाता है। अदिति सम्यक् रूप से तुझे जान लेती है। इस प्रकार न केवल तू अदिति से अच्छी प्रकार से, भली प्रकार से परिचय प्राप्त कर सके बल्कि यह अदिति भी तेरे से परिचय प्राप्त कर ले, तुझे भी अच्छे से जान ले। इस मेल-जोल के कारण तेरी अदिति से घनिष्टता बन जावे, निकटता बन जावे। दोनों सहचर बन जावें।

हे प्राणी! परमपिता परमात्मा ने तुझे अदिति की गोद दी है, उसकी गोद में तुझे बैठा दिया है। जब अदिति की गोद तुझे प्राप्त हो गयी है तो तू कभी अदीन नहीं हो सकता, दूसरों के आगे हाथ फ़ैलाने की अब तुझे आवश्यकता ही नहीं है। अब तू अकृपण हो गया है अर्थात् अब तू निर्धन नहीं है। सब प्रकार के सुख सुविधाएं इस अदिति के कारण तुझे मिल गई हैं। जब तू किसी के आगे हाथ फ़ैलाने की आवश्यकता ही नहीं समझेगा तो तेरे अन्दर किसी प्रकार की हीनता की भावना हो, यह सम्भव ही नहीं हो सकता। अतः तू अब आत्म-सम्मान वाला बन गया है। इस कारण ही तेरे अन्दर दिव्य गुणों ने प्रवेश कर लिया है। अब तो तेरे लिए एक ही कार्य बचा है, वह यह कि जो दिव्य गुण तुझे मिले हैं, इन्हें बढ़ाने का निरंतर यत्न कर।

३. अब तू सम्मानीय बन गया है:-

हे जीव! जब तू ने दिव्य-गुणों को प्राप्त कर लिया है। इन दिव्य गुणों को अपने अन्दर और अधिक विकसित करने में लगा है तो तू कभी भी धर्म के मार्ग पर चलते हुए भयभीत नहीं हो सकता, निरन्तर धर्म-मार्ग पर आगे बढ़ने का ही यत्न करेगा, प्रयास करेगा। धर्म के मार्ग पर जाने वालों का यह संसार सदा सम्मान करता है। इस प्रकार सम्मानित हो कर तू सबका आदरणीय बन जावेगा अर्थात् सब लोग तुझे आदर व सत्कार देने वाले बन जावेंगे।

४. शाकाहारी बन:-

जो प्राणी मांसाहारी होता है, उसमें अनेक प्रकार की बुराईयां आ जाती हैं, राक्षसी प्रवृतियां आ जाती है किन्तु तेरा जीवन तो वनस्पतियों पर आधारित है, इस कारण तेरे अन्दर यह सब बुराईयां तो आने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता। तेरे इस शरीर को आनन्दमय कोष कह सकते हैं। इसका कारण है कि तू वनस्पतियों पर ही निर्भर है। तूने मांस-मदिरा आदि का सेवन नहीं किया है। इस कारण तू शुद्ध और पवित्र है। कोई भी विकृत प्रवृति तेरे अन्दर प्रवेश ही नहीं कर सकती। इसे बनाये रखने के लिए सदा शाकाहारी भोजन पर ही निर्भर रह।

५. ज्ञान विज्ञान को ग्रहण कर:-

हे जीव! तू पवित्र है तथा इस पवित्रता को बनाये रखने के लिए तू सदा वेद की पवित्र वाणियों का स्वाध्याय करता रहता है। वेद के इस स्वाध्याय से तेरे अन्दर की पवित्रता, दिव्यता निरन्तर बढ़ती ही चली जा रही है। इसलिए तू सदा अपने अन्दर सब प्रकार के ज्ञान तथा विज्ञान को बढ़ाता ही चला जाता है।

६. सदा अदीन देवमाता के सम्पर्क में रह:- जब हम ने अपने अन्दर व बाहर को शुद्ध पवित्र कर देवमाता अदिति की गोद में बैठने का अधिकार पा लिया है तो फिर हमें और क्या चाहिये अर्थात् कुछ भी नहीं। अदिति की गोद में बैठकर हम विशाल मूल वाले बन गये हैं। इसका भाव यह है कि हम ने अपनी उन्नति के आधार को व्यापक बना लिया है, दृढ़ बना लिया है। हे जीव! तूने अपने शरीर, अपने मन तथा अपने मस्तिष्क सब के विकास का सदा ध्यान रखा है। इस कारण तेरा शरीर, मन व बुद्धि पवित्र व शुद्ध हो गयी है। अब तुझे और अधिक ज्ञान देने की, उपदेश देने की मैं आवश्यकता नहीं समझता। बस अन्त में एक बार फिर तुझे स्मरण मात्र ही दिलाता हूं कि तेरे साथ अदिति का सम्पर्क, अदिति की गोद सदा बनी रहे। इस प्रकार तू सदा अदीन देवमाता अदिति के सम्पर्क में रहते हुए अदीन ही बना रहा।

वेदवाणी

परमेश्वर की मित्रता में अभय-प्राप्ति

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम्।।

-ऋ० १।११।२

ऋषिः-**जेता माधुच्छन्दसः**।। देवता-**इन्द्रः**।। छन्दः-**अनुष्टुप्**।।

विनय-हे परम ईश्वर! तुम्हें अपना सखा जानकर अब संसार में और किसी से क्या डरना है! सब बल के स्वामी 'शवसस्पति' तो तुम हो। तुमसे बल-ज्ञान पाकर, 'वाजी' होकर डरना कैसा? तुम्हारा सहारा पकड़कर अब कैसा भय? अदूर भविष्य चाहे कितना अन्धकारमय दीख रहा हो, सामने चाहे कितना विकट सङ्कट आता दीखता हो, फिर भी हम निर्भय हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि इस सबको यदि तुम चाहो तो एक क्षण में टाल सकते हो। जब तुमसे नाता जोड़ लिया, जब तुम्हारी राह में चल पड़े, तो दुःख-पीड़ा, अर्थनाश, सम्बन्धियों का वियोग, जग-हँसाई आदि के सह लेने में क्या पड़ा है? तुम महाबली का नाम लेते हुए हम भारी-से-भारी अत्याचारों को हँसते-हँसते सहते जाते हैं। तुम्हारे प्यारे सच्चे मार्ग पर चलते हुए एक बार नहीं, लाख बार यदि मौत आये तो हम उसे भी आनन्दमग्न होकर स्वीकार करते जाते हैं। इनमें भय की क्या बात है? सचमुच, हे इन्द्र! तेरे सख्य को पाकर हम निर्भय हो गये हैं, दुर्लभ 'अभय' पद को पा गये हैं, अभय बन गये हैं, पर इस उच्च अभय-अवस्था को प्राप्त होकर भी, हे मेरे स्वामिन्! हम कभी मन में अभिमान को कैसे ला सकते हैं? क्या हम नहीं जानते कि संसार की सब विजय तुम्हारे बल द्वारा ही प्राप्त हो रही हैं, तुम ही संसार में एकमात्र जेता हो, विजयी होने वाले हो? तुम्हें, तुम्हारी शक्ति को संसार में और कोई नहीं पराजित कर सकता। यह अनुभव करते हुए, हे मेरे सखा! ज्यों-ज्यों हममें तुम्हें पाकर आत्माभिमान बढ़ता गया है, त्यों-त्यों हममें तुम्हारे प्रति नम्रता भी बढ़ती गई है। ज्यों-ज्यों तुम्हारी कृपा से हममें अभयता आती गई है, त्यों-त्यों तुम्हारे चरणों में भक्ति भी बढ़ती गई है। इसलिए हमें अभयपद प्रदान करने वाले हे प्रभो! हम तुम्हें प्रणाम करते हैं। हे जेत! हे अपराजित! हम तुम्हारा स्तुति-गान करते हैं। तुम्हारा नित्य निरन्तर गुण-कीर्त्तन करते हैं। ओह! तुम्हारा गुण-कीर्त्तन करते हुए हम कभी नहीं थकते, हम कभी नहीं धकते।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org